शोध पत्र- संस्कृत

प्रेमचन्द एवं पत्रकारिता

* सुधा यादव

भारत में पत्रकारिता की शुरूआत एक मिशन के रूप में हुई थी। जिसका मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति एवं लोक हित था। स्वतंत्रता के पूर्व की पत्रकारिता त्याग,संघर्ष, ओजऔर निर्भिकता से परिपूर्ण थी। इसलिए पत्रकारिता को संघर्षमय परम्परा का द्योतक माना जाता है। राष्ट्रीय जागरण के लिए उस समय के नेताओं जैसे–बाल–गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय महात्मा गांधी ,जवाहरलाल नेहरू, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि ने पत्रकारिता को एक ठोस साधन के रूप में अपनाया था। अथवा यों कहें कि एक अस्त्र के रूप में अपनाया था।

अनेक साहित्यकारों जिसमे महावीर प्रसाद दिवेदी, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रताप नारायण मिश्र तथा उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है ने भी पत्रकारिता को नया आयाम प्रदान किया। वैसे भी पत्रकारिता एवम साहित्य में बहूत अन्तर नही है। अंग्रेजी में पत्रकारिता को 'लिटरेचर रिटन इन हरी' शीघ्रता से लिखा गया साहित्य कहा जाता है। पत्रकारिता में आज जो परिर्वतन आया है,उसका श्रेय अनेक साहित्यकारों को जाता है,जिन्होंने पत्रकारिता को नयी भाषा, नयीशैली प्रदान की तथा उसे परिमार्जित भी किया। प्रस्तुत शोध पत्र प्रेमचन्द एवं पत्रकारिता को ही मुख्य बिन्दु मानकर लिखा गया हैं।

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में समाज की वास्तविकता को जिस समग्रता के साथ अभिव्यक्त किया है वह भारत के और विशेषकर हिन्दी के रचनाकारों के लिए आदर्श है। समाज के सभी वर्गो के चित्र मुंशीजी ने अपनी रचनाओं में उकेरे हैं। शोषक वर्ग के चरित्रों की चालाकी, काईयांपन एवं घाघपन को बहुत ही रचनात्मक ढ़ग से उदघाटित किया है तथा शोषित वर्गो के भोलेपन,असहायता व लाचारी को भी बहुत मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया हैं।

प्रेमचन्द की समाज के दलित ,वंचित, उत्पीड़ित वर्गो के प्रति स्पष्ट पक्षधरता रही हैं। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के माध्यम से वास्तविकता स्थितियों का चित्र खींचते हुए शोषित वर्गो के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए शोषकों के प्रति तीखी लताड़ लगाई हैं। जागरूक रचनाकार के साथ–साथ प्रेमचन्द पत्रकार भी थे और सक्रिय नागरिक भी। उनकी प्रखर दृष्टि समार सामाजिक शक्तियों की टकराहट को उनके स्वार्थो को भलीभांति पहचान रही थी। वे समाज की प्रतिक्रियावादी ,विकासपरक एवं मेहनतकश वर्गो के बीच चल रहे संघर्ष व द्वन्द्व को पहचानकर अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बना रहे थे। इसी कारण प्रेमचन्द जैसे प्रगितशील जनधर्मी रचनाकारों पर एक तरफ प्रतिक्रियावादी व अंग्रेज भक्त शक्तियॉ घृणित आरोप लगाकर जनता में बदनाम करने की कोशिष कर रही थी। इन जनविरोधी शक्तियों ने प्रेमचन्द को ब्राहाण–द्रोही और घृणा का प्रचारक' तक कहा। परन्तु प्रेमचन्द अपने रचना कर्म में मस्त रहते थे। इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद'' से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के दिसम्बर 1933 के अंक में मुंशी जी की एक कहानी 'सदगति' प्रकाशित हुई तो श्रीनाथ सिंह ने उस कहानी के आधार पर 'घृणा के प्रचारक प्रेमचन्द ' लेख लिखकर मुंशीजी पर निहायत घृणास्पद आक्रमण किया। तब मुंशी जी ने उसका जवाब पत्रकारिता के द्वारा 'हंस' साहित्यक पत्रिका में' जीवन में घृणा का स्थान' लेख लिख कर दिया। प्रेमचन्द ने अपनी रचना प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए लिखा कि'' वे व्यक्तियों के शत्रु नही हैं, न वे द्वेष या ईर्ष्या के कारण साहित्य की रचना करते हैं। वे तो उन परिस्थितियों और प्रवतियों के शत्रु हैं, जिनके हाथों ऐसे व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। व्यक्तियों से तो उन्हें उतना ही प्रेम है जितना उन्हें अपने भाई से हो सकता है।

जनशक्ति को संगठित करने के लिए प्रेमचन्द ने पत्रकारिता की उज्जवल मशाल भी जलाई। उनकी पत्रकारिता निष्पक्षता और साहसिघता के साथ जनमत निर्माण का दस्तावेज है। प्रेमचन्द ने आज से लगभब एक शताब्दी पहले (1905) जमाने में देशी वस्तुओं का प्रचार कैसे बढ़ सकता है, शीर्षक से लम्बी टिप्पणी लिखी थी। वह आज भी प्रासंगिक है। प्रेमचन्द की पत्रकारिता इस अश्वमेघ यज्ञ के खिलाफ ललकार है। साम्प्रदायिकता की विष बेल के खिलाफ तो वे शुरू से ही रहे थे। प्रेमचन्द पत्रकार के रूप में तीन दशक तक पत्रकारिता जगत में छाए रहे। 'स्वदेश', 'आज' एवं 'मर्यादा' आदि पत्रों से वे सम्बद्ध रहे और असहयोग आन्दोलन के जमाने में स्तंभकार के रूप में विख्यात थे।

प्रेमचन्द ने सनसनीखेज खबरों और व्यावसायिक हितों को तरजीह न देकर पत्रकारिता को बुनियादी सवालों से जोड़ते रहे। अपने समय की राजनीतिक घटनाओं पर प्रेमचन्द की जागरूक निगाह बराबर बनी रही और इन घटनाओं पर वह निरन्तर निर्भीक संपादकीय टिप्पणियां लिखते रहे। स्वराज और साम्राज्यवादी शोषण के प्रश्न पर उनका चिंतन अपने समय के राष्ट्रीय नेतृत्व से आगे बढ़ा हुआ था।

''जिस दिन से भारतीय बाजार में विलायती माल भर गया, भारत का गौरव उसी दिन से ही लुटना शुरू हो गया''। इस बात की प्रेमचन्द ने न केवल पहचान की, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अनवरन संग्राम भी किया। स्वराज मिलकर रहेगा (मई 1931), दमन की सीमा (अप्रैल 1932), काले कानूनों का व्यवहार (जनवरी 1933), शक्कर पर एक्साइज डयूटी

(जुलाई 1933), कोढ़ पर खाज (जून 1935), जैसे शीर्षक से लिखी गई टिप्पणियां उनकी उपनिवेशवादी विरोधी चेतना के प्रमाण हैं। उनकी संपादकीय तटस्था को जैनेन्द्र जी ने 'ममताहीन सद्भावना' कहा था।

निष्कर्ष

प्रेमचन्द ने पत्रकारिता को मिशन माना, फैशन या व्यवसाय नहीं। वह पत्रकारिता में पूंजी के प्रभुत्व और सस्ते प्रचारतंत्र के सख्त विरोधी थे। प्रेमचन्द ऐसे पत्रकार न थे, जो पत्रकारिता की आर्थिक विवशता को सिद्धान्तों की कुरबानी देकर विज्ञापनों की बलशालिता के आगे नतमस्तक हो जाते हों। आज की पत्रकारिता में जिस आदर्श—मानदंडो का और जज्बाती भावना का अभाव हैं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि आज आधुनिक चमक—दमक वाली पत्रकारिता की प्रेमचन्द की पत्रकारिता विमर्श से बहुत कुछ सीखना शेष हैं।

"जमाना जो मिटा दे नाम मेरा
मगर जारी रहेगा काम मेरा" – प्रेमचन्द।

आज पत्रकारिता के क्षेत्र में त्याग का स्थान ग्लैमर ने ले लिया है। अपराध तथा यौन मामलों से जुड़े समाचारों का दृश्य सहित प्रसारण बढ़ रहा है। गांवों में रहने वाली पचहतर फीसदी जनसंख्या के विकास से जुड़े मुद्दे अभी पत्रकारों की रूची का विषय नही बन पाये हैं। सच्ची पत्रकारिता के लिए पत्रकारों को दिग्गज राजनेताओं की प्रशंसा के पुल बॉधने, सनसनीखेज खबरों को बेचने, बाहुबलियों को हीरो बनाने तथा ग्लैमर की दुनियां में मस्त रहने की प्रवृति से बचना होगा।

* **संस्कृत अध्यापिका, सेक्टर-3, रेवाड़ी**

संदर्भ ग्रंथ

1. रस्तोगी, श्रीपति 'पत्रकारिता के बदलते आयाम' प्रौढ़ शिक्षा, वर्ष 54 अंक 2, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली, 2010.
2. पाठक, सतीश कुमार 'प्रेमचन्द की पत्रकारिता के सरोकार', अमर उजाला, 31.07.2012.
3. सुभाषचन्द्र, प्रेमचन्द का दलित प्रसंग, हरकारा अंक 42—43, फरवरी—जुलाई 2008.